2 नवम्बर 2008, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

भगवान महावीरस्वामी के निर्वाण दिवस पर सभी पाठकों एवं संवाद दाताओं को जैनपथप्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक शुभ-कामनायें।

वर्ष : 31, अंक : 15 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

नवम्बर (प्रथम), 2008 प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

आखिर, कैसे मनायें दीपावली ?

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 28 नवम्बर को भगवान महावीरस्वामी के निर्वाणोपलक्ष में प्रात: सामूहिक पूजन के उपरान्त निर्वाण लाडू चढाया गया। तदुपरान्त समग्र बापूनगर जैन समाज सहित जयपुर के विविध उपनगरों से पधारे साधर्मियों की आशातीत उपस्थिति में ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने इस अवसर पर कहा कि आज के दिन भगवान महावीर को निर्वाण की प्राप्ति हुई थी और उनके परमशिष्य प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

आज हम दीपावली के दिन निर्वाण लाडू चढ़ाते हैं, दीपक जलाते हैं, पटाखे फोड़ते हैं, एक-दूसरे को मुबारकबाद देते हैं, हैप्पी दिवाली बोलते हैं, एक-दूसरे के घर जाते हैं तो घरवाले आनेवालों का लड्डू खिलाकर स्वागत करते हैं, दीपावली के कार्ड डालते हैं। अनेक प्रकार से खुशियाँ मनाते हैं।

आज के दिन हम जिस तरह का वातावरण देखते हैं; उससे लगता ही नहीं कि आज भगवान महावीर हमें छोड़कर चले गये थे।

अरे भाई ! यह ईद नहीं, मुहर्रम है; संयोग का नहीं, वियोग का पर्व हैं; खुशियाँ मनाने का नहीं, संजीदगी का पर्व है।

इस बात को समझने के लिये आपको एक कल्पना करनी होगी कि हम आज के नहीं, भगवान महावीर के जमाने के हैं और जिस दिन से भगवान महावीर की दिव्यध्वनि खिरना प्रारम्भ हुई थी, उसी दिन से उनके नियमित श्रोता रहे हैं।

धन्य थी वह तेरस जिस दिन आपने उनका अंतिम व्याख्यान सुना था और जिसे आज इन लक्ष्मी के पुजारियों ने धनतेरस बना लिया है।

चतुर्दशी के दिन न सही प्रवचन; पर दर्शन तो मिल ही गये थे; किन्तु जब अमावस्या के दिन पहुँचे तो न प्रवचन मिला, न दर्शन; क्योंकि अमावस की यह काली रात हमारे महावीर को लील गई थी, उनका निर्वाण हो गया था।

अब जरा कल्पना कीजिये कि उससमय आपको कैसा लगा होगा ? क्या उस दिन आपने लड्डू चढ़ाये होंगे, पटाखे छोड़े होंगे, एक-दूसरे को मुबारकबाद दी होगी, खाते-बही संभाले होंगे, तराजू बाँटों की पूजा की होगी।

इस पर लोग कहते हैं कि आखिर आप चाहते क्या हैं ? क्या दीपावली के दिन हम सब रोने बैठ जावें ?

नहीं भाई ! रोने बैठने की बात नहीं है; क्योंकि हमारे आराध्य श्री भगवान महावीर को आज वह सब कुछ प्राप्त हुआ है, जिसके लिये वे अनेक भवों से प्रयत्नशील थे। वे आज अव्याबाध सुखी हो गये थे। आज उन्होंने आठों कर्मों को जीत लिया था; इसलिये यह विजय का पर्व है; इस बात की हमें खुशी भी है; पर इस खुशी में हँसना-खेलना नहीं है, खाना-पीना नहीं है, लक्ष्मी के नाम पर पैसे की पूजा करना नहीं है; इसमें एक सात्त्विक गंभीरता है; क्योंकि हमारे प्रिय को सबसे बड़ी उपलब्धि हो जाने पर भी हमारे लिये वे अब उपलब्ध नहीं रहे, यह एक महान हितोपदेशी/हितैषी के वियोग का अवसर है।

इस पर कुछ लोग कहते हैं कि अब आप ही बताइये कि आखिर हम दीपावली मनायें कैसे ?

जिसप्रकार की दीपावली भगवान महावीर के प्रथम शिष्य गौतम गणधर ने मनाई थी; हमें भी उसीप्रकार मनाना चाहिये; क्योंकि भगवान महावीर के बाद हमारे मुख्य मार्गदर्शक वे ही थे।

भगवान महावीर के वियोग के अवसर पर गौतमस्वामी रोने नहीं बैठ गये थे; अपितु जगत से दृष्टि हटाकर अपने में चले गये थे। मानों अबतक दिव्यध्वनि सुनने के विकल्प में ही वे निर्विकल्प नहीं हो सके थे। अब वह विकल्प टूटा तो निर्विकल्प होकर अपने में चले गये। और अपने में गये सो ऐसे गये कि वापस बाहर आये ही नहीं; केवलज्ञान लेकर ही रहे और वीतरागी तत्त्वज्ञान का जो झंडा अबतक भगवान महावीर फहरा रहे थे, उनके वियोग में उन्होंने उसे थाम लिया, गिरने नहीं दिया। उनकी दिव्यध्वनि खिरने लगी और श्रोता पूर्ववत् ही लाभ उठाने लगे।

इसप्रकार भगवान महावीर की वाणी में समागत तत्त्वज्ञान की धारा अविरलरूप से प्रवाहित होती रही।

भगवान महावीर के झंडे को गौतमस्वामी ने थाम लिया। उसके बारह वर्ष बाद गौतमस्वामी का निर्वाण हुआ तोउसी दिन सुधर्मस्वामी को केवलज्ञान हुआ। इसीप्रकार उसके बारह वर्ष बाद सुधर्मस्वामी को निर्वाण हुआ तो जम्बूस्वामी को केवलज्ञान हुआ। ये तीन अनुबद्ध केवली कहे जाते हैं।

उसके बाद यह झंडा श्रुत केवलियों ने थामा और उसके बाद आचार्य कुन्दकुन्द जैसे अनेक समर्थ आचार्यों ने, महापण्डित टोडरमल जैसे अनेक ज्ञानी पण्डितों ने थामा तथा अब उसके भी बाद आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने यह झंडा थामा था और वह आज हमारे हाथ में है।

हमारे हाथ का मतलब अकेले हमारे हाथ में नहीं, पण्डित हुकमचन्द के हाथ में भी नहीं; अपितु उन सब लोगों के हाथ में कि जो लोग महावीर की वाणी

(शेष पृष्ठ 8 पर...)

सम्पादकीय -

चलते-फिरते सिद्धों से गुरु (17)

ह्न पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

यद्यपि संघस्थ आचार्य एवं उपाध्याय सामान्य जनता की सुविधा के अनुसार प्रवचन देने के लिए प्रतिबंधित नहीं होते; तथापि भव्य जीवों के भाग्योदय से प्रायः प्रतिदिन प्रातः ९ से १० बजे तक १ घंटे के प्रवचनों का लाभ समाज को मिल रहा था।

करुणासागर आचार्यश्री ने समाज की रुचि को देखकर प्रवचन शृंखला बराबर चालू रखी। मुनियों के मूलगुणों के विवेचन के माध्यम से श्रावकों को तो उनके आवश्यक कर्तव्यों का ज्ञान हो ही रहा था, संघस्थ साधु भी ऐसा महसूस कर रहे थे कि ह्न 'यदि समय-समय मुनिचर्या पर ऐसे प्रवचन होते रहें तो साधु समाज भी अपने आवश्यक कर्तव्यों में शिथिल नहीं हो पायेगा, अन्यथा शिथिलता आ जाना असंभव नहीं है।'

संघस्थ साधुओं की प्रवचनों के प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया देखकर भी आचार्यश्री ने प्रवचन शृंखला आगे बढ़ाते हुए आज से मुनिराज के उत्तरगुणों की विस्तार से चर्चा करने का मन बना लिया।

आचार्यश्री ने तत्त्वोपदेश प्रारंभ करते हुए कहा ह्न ''मुनिराज के उत्तरगुणों में धर्म के दसलक्षण, बारह भावनायें, बाईस परीषह, संयम, सामायिक एवं स्वाध्याय आदि अन्तरंग तप तथा अनशन, उनोदर आदि बाह्य तप ह्न ये साधु परमेष्ठी के प्रमुख उत्तरगुण हैं।'' जिनकी आराधना/साधना साधु सदा किया करते हैं। इनके माध्यम से ही मुनिराज आध्यात्मिक विकास की शक्ति प्राप्त करते हैं। तथा शुद्धि की वृद्धि करते हुए सम्पूर्ण विकारों का क्षय करके पूर्ण अविकारी मुक्तदशा को प्राप्त करते हैं।

यद्यपि मुनिजीवन में आत्मिक उत्कर्ष की दृष्टि से उत्तरगुणों का बहुत भारी महत्त्व है; परन्तु मूलगुणों की उपेक्षा करके मात्र उत्तरगुणों की रक्षा करना योग्य नहीं है; तथापि उत्तरगुणों में दृढ़ता इन्हीं मूलगुणों के निमित्त से ही प्राप्त होती है। जिसप्रकार मूलरहित वृक्ष फल उत्पन्न नहीं कर सकता; उसीप्रकार मूलगुण से रहित समस्त उत्तरगुण फलदायी नहीं हो सकते।

'जो उत्तरगुणों को प्राप्त करने के लिए मूलगुणों को गौण कर देते हैं, वे अपने हाथ की अंगुलियों की रक्षा के लिए मानो अपना शिरच्छेद ही करा लेते हैं।'

मूलगुणों को छोड़कर या उपेक्षा करके प्रशंसा पाने के लिए उत्तर गुणों का कठोरता से पालन करना ठीक नहीं हैं।

जिसतरह मूलगुणों की संख्या निश्चित है, उसतरह उत्तरगुणों की कोई सुनिश्चित संख्या नहीं है; क्योंकि मूलगुणों के अतिरिक्त सभी व्रत-शीलादि उत्तरगुणों में समाहित हैं। वैसे आगम में उत्तरगुणों की उत्कृष्ट संख्या चौरासी लाख तक मानी गयी है। परन्तु चौरासी लाख तो क्या चौरासी नाम याद रखना संभव नहीं लगता है, फिर भी चिंता की कोई बात नहीं है; क्योंकि उन सब नामों को याद रखना आवश्यक भी नहीं है। मुनि की भूमिका के योग्य कषायों का अभाव होने से वे सभी उत्तरगुण सहज प्रगट हो जाते हैं।

धर्म के दस लक्षण चारित्रगुण की एक समय की निर्मल पर्याय के ही दस नाम हैं, जो चारित्रगुण की क्रोधादि दस विकारी पर्यायों का अभाव करके प्रगट हुए हैं। आत्मा में अनादि काल से चारित्रगुण की विकृतियाँ और कुशील (अब्रह्म) आदि होते रहे हैं, तत्त्वज्ञान के अभ्यास से इनके अभाव होने पर साधुओं के चारित्रगुण में जो निर्मलता प्रगट हो जाती है उसे ही उत्तम क्षमादि दसधर्म कहते हैं।

जैसे कृष्ण एक है; परन्तु निमित्त अपेक्षाओं से उनके नाम अनेक हैं; गोपाल, गोपीबल्लभ, राधाबल्लभ, देवकीनन्दन, घनश्याम, कंसारि, मुरारी आदि; उसीप्रकार चारित्रगुण की एक निर्मलपर्याय है, किन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ आदि दस विकृतियों के अभाव के कारण उस एक ही निर्मल पर्याय के ये दस नाम हैं।

यद्यपि ये दस धर्म मुख्यतः मुनियों के उत्तर गुण हैं; तथापि गृहस्थ भी इनकी आराधना करते हैं। इतना ही नहीं, ये दसधर्म सार्वजनिक हैं, सर्वकालिक एवं सार्वदेशिक भी हैं; क्योंकि क्रोधादि विकारों को सभी जन बुरा मानते हैं, सभी कालों में अर्थात् भूत में, भविष्य में और वर्तमान में इन्हें अहित कर, दुःखद माना जाता है तथा सभी देशों में ये विकार अच्छे नहीं माने जाते। अतः मानव मात्र किसी न किसी रूप में इन दस धर्मों की आराधना एवं अंगीकार करने में तत्पर रहते हैं।

वैसे तो इन पर्वों की आराधना/साधना करने की कोई तिथि विशेष नहीं होती, ये तो सदैव जीवन में अपनाने के सिद्धान्त हैं, फिर भी सम्पूर्ण जैन समाज भादों के शुक्लपक्ष में इन पर्वों को एक महान उत्सव के रूप में मनाते हैं। सो यह तो प्रसंशनीय है, परन्तु अफसोस यह है कि यह पर्व परम्परागत रूढ़ि बनकर रह गया है। इस कारण इसकी आराधना में बहुत भूलें होने लगी हैं।

इस सन्दर्भ में पण्डित टोडरमलजी लिखते हैंह्न

''अज्ञानी बन्धादिक के भय से तथा स्वर्ग-मोक्ष की इच्छा से क्रोधादि नहीं करता, परन्तु वहाँ क्रोधादि करने का अभिप्राय तो मिटा नहीं है। जैसे ह्न कोई राजादिक के भय से अथवा महन्तपने के लोभ से परस्त्री का सेवन नहीं करता तो उसे त्यागी नहीं कहते। वैसे ही यह क्रोधादिक का त्यागी नहीं है। वास्तव में जब पदार्थ अनिष्ट-इष्ट भासित होते हैं तब क्रोधादिक उत्पन्न होते हैं; तथा जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई इष्ट-अनिष्ट भासित न हों, तब स्वयमेव ही क्रोधादि उत्पन्न नहीं होते; तब सच्चा क्षमा धर्म होता है।'' **(क्रमशः)**

(५ अक्टूबर से १४ अक्टूबर ०८ तक श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में आयोजित शिक्षण शिविर के अवसर पर ''जैन अध्यात्म को डॉ. भारिल्ल का साहित्यिक अवदान'' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी (सेमिनार) में पठित आलेख)

डॉ. भारिल्ल की रीति-नीति पर महात्मा गांधी एवं कानजी स्वामी का प्रभाव

ह्न **डॉ. मनीष जैन शास्त्री**, व्याख्याता एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री के.के. जैन पी.जी. कॉलेज, खतौली (उ.प्र.)

युग के अनगिनत तत्त्वों से अप्रभावित रहकर युग को प्रभावित करनेवाला व्यक्ति युगपुरुष कहलाता है। समय की धमनियों में अनेक विध्वंसकारी एवं सृजनकारी तत्त्व प्रवाहित होते हैं, उन तत्त्वों की पहिचान कर सार्वभौमिक तत्त्वों का पल्लवन व कलात्मक अभिव्यक्ति ही साहित्य है। साहित्य में निहित उद्देश्य का फलक जितना विशाल होगा, उसका असर भी उतना व्यापक होगा। जिस साहित्य में मानव मात्र के मर्म को छूने की शक्ति हो, वही साहित्य जीवित रहता है। मर्म को छूने वाली इसी जीवन शक्ति के आधार पर किसी साहित्य का मूल्यांकन होना चाहिए।

यद्यपि यह सच है कि डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की संपूर्ण साहित्यिक व असाहित्यिक रचनाएँ जैनदर्शन की पृष्ठभूमि में लिखीं गईं हैं; तथापि उनका चिंतन प्राणीमात्र को स्पर्श करता है। उनकी दार्शनिक व्याख्याओं में सायास व अनायास अनेक बिन्दु ऐसे हैं, जो हमारी आध्यात्मिक जद्दोजहद का समाधान प्रस्तुत करते हैं। उनके साहित्य में सर्वत्र मानवीय सार्वभौमिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है।

यूं तो धार्मिक प्रचार एक सीधी-साधी प्रक्रिया है, लेकिन डॉ. भारिल्ल को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी द्वारा उद्घाटित जैन तत्त्वज्ञान के साथ-साथ उस तत्त्वज्ञान के विरोध का माहौल भी विरासत में मिला। विरोध के मुश्किल हालातों में भी तत्त्वप्रचार कैसे करना ह्न इसमें डॉ. भारिल्ल की रीति-नीति का मेरुदण्ड तो कानजी स्वामी का No reply is the better reply वाला तरीका ही है।

बावजूद इसके उन्होंने व्यावहारिकरूप से गांधीजी की विचारधारा के कतिपय अंशों को भी उसी आस्था के साथ अपनाया।

हालांकि गांधीजी की निजी दार्शनिक विचारधाराओं से इनका कोई सरोकार नहीं है, फिर भी उनके सत्य-अहिंसात्मक आंदोलन ने डॉ. भारिल्ल की कार्यशैली पर गहरा प्रभाव डाला।

महात्मा गांधी और कानजी स्वामी का संसार बिल्कुल अलग-अलग था। लोग कहते हैं कि देश की आजादी के लिए गांधीजी का अवतार हुआ एवं आध्यात्मिकता के प्रचार के लिए कानजी स्वामी का; किन्तु मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि इन दोनों ही महापुरुषों का अन्तिम उद्देश्य यह नहीं है। दोनों के जीवन का अन्तिम लक्ष्य या यूं कहें कि पहला लक्ष्य तो आध्यात्मिक सत्य की प्राप्ति एवं साधना था, किन्तु आंख बंद कर संसार से निरपेक्ष रहकर एकान्तिक साधना में वे कैद न रह सके और निकल पड़े वहाँ, जहाँ कुत्सित स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं।

काठियावाड़ की रत्नगर्भा भूमि के इन दोनों रत्नों में एक ने देश को स्वतंत्र कराया तो दूसरे ने परमाणु-परमाणु की स्वतंत्रता का शंखनाद किया। दोनों महापुरुषों के आंदोलन में अनेक विडम्बनाएँ थीं। गांधीजी को दो शक्तियों से लड़ना था। पहली बाहरी और दूसरी भीतरी। बाहरी शक्ति अंग्रेज थे और दूसरी हमारे ही भाई, जो गांधीजी की सत्य-अहिंसा को कायरों का हथियार मानते थे। नाथूराम गोडसे कोई अंग्रेज थोड़े ही था। कानजी स्वामी के सामने बाहरी शक्ति तो कोई नहीं थी। उनके प्रति सारा विरोध तो उनके ही जैन भाइयों द्वारा था। उन्हें तो जैनों की बात जैनियों के गले उतारनी थी। गांधीजी की सारी शक्ति अहिंसात्मक आन्दोलन की वकालत में लगी; वहीं कानजी स्वामी की, अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में।

दोनों विद्वानों की विचारधाराएँ इस युग के लिए बिल्कुल नईं थी और नये गेहूं को पचाने की ताकत सभी की आंतों में नहीं होती। विचारधाराओं के इसी संघर्ष में दोनों ने अपना काम किया। दोनों के प्रयास इस सत्य के दस्तावेज हैं कि साध्य महान है तो साधन भी उसी गरिमा के अनुकूल महान होना चाहिए। साधन की महानता की इस अवधारणा को डॉ. भारिल्ल ने अपनी रीति-नीति का आधार बनाया।

गांधीजी एवं कानजी स्वामी की नजरों में शत्रु कोई नहीं है। वे कभी किसी व्यक्ति को दानव के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसके भीतर दबे हुए दुराग्रह, अज्ञान, उच्श्रृंखलता और नादानी को ही वे दानवी प्रवृत्ति मानते हैं। उनका संपूर्ण प्रयास इन्हीं दानवीय तत्त्वों के खिलाफ हैं। डॉ. भारिल्ल की रचनाओं में यह प्रवृत्ति सर्वत्र देखने को मिलेगी। सत्य की खोज में समागत यह अंश देखिए ह्न

''अरे भाई ! हमें विरोधियों को नहीं, विरोध समाप्त करना है। अज्ञान के कारण जो अभी तक तत्त्व का, सत्य का विरोध करते थे; वे सब भूले-भटके हमारे भाई ही तो हैं।[१]''

डॉ. भारिल्ल की अधिकांश रचनाएँ दार्शनिक हैं; उनका रीति-नीति से कोई रिश्ता नहीं। प्रसंगवश यत्र-तत्र उनके नीतिगत तत्वों का समावेश हुआ है, फिर भी उपन्यास 'सत्य की खोज' एवं आत्मधर्म के संपादकीयों में उनकी रीति-नीति का एक व्यवस्थित प्रारूप मिलता है। 'सत्य की खोज' में विवेक की नीतियाँ उपन्यासकार की ही अपनी नीतियाँ हैं। संपादकीयों में भयंकर विरोध के बावजूद जिस आत्म-विश्वास से उन्होंने अपनी रीति-नीति रखी एवं उसका औचित्य सिद्ध किया है, वह इस युग की एक बेशकीमती धरोहर है।

डॉ. भारिल्ल के हृदय की धड़कनें जिसने समझ लीं, वह कुछ क्षणों के लिए महात्मा गाँधी और डॉ. भारिल्ल के द्वैत को भूल जायेगा; वहाँ गांधीजी, कानजी स्वामी और डॉ. भारिल्ल मिलकर एक हो गये हैं।

कानजी स्वामी की नीति थी किसी को कोई जवाब नहीं देना।

डॉ. भारिल्ल इसे अक्षरशः स्वीकार करते थे, किन्तु जब उनके सामने ही उनके गुरु की निन्दा की जाने लगी, जिनवाणी को मंदिरों से बेइज्जत कर निकाला जाने लगा, कानजीस्वामी के अनुयायियों को अनेक तरह से प्रताड़ित किया जाने लगा; विरोधी लोग नग्नता पर उतर आये और शान्तिप्रिय समाज में कलह का वातावरण बनाने लगे; यहाँ तक कि हमारी ज्ञानाराधना में भी विघ्न पैदा किये जाने लगे तो ऐसी मुश्किलों में डॉ. भारिल्ल जवाब नहीं देने वाले दायरे से कदाचित् बाहर भी निकले और अनेक बार समाज में फैली हुई भ्रान्तियों के निराकरण और शान्ति के लिए पत्रकारिता के माध्यम से जवाब भी दिया। हालांकि उनका प्रयास यही रहता कि सफाई न देना पड़े, किन्तु जवाब में समागत तथ्यों का जितना सकारात्मक प्रभाव समाज पर हुआ; उससे कहीं अधिक प्रभाव उनके जवाबों की शिष्टता, शान्ति का प्रयास एवं अहिंसामूलक प्रेम एवं उद्देश्य की पवित्रता का पड़ा। जवाब में बुद्धितत्त्व की मुख्यता होती है; किन्तु डॉ. भारिल्ल के आलेखों में जो हृदय की पवित्रता का सौन्दर्य था; वह कानजी स्वामी का प्रभाव ही था। उन जवाबी आलेखों में प्रस्तुतीकरण उनका था; किन्तु धड़कनें कानजीस्वामी की ही थीं।

कानजीस्वामी की तरह डॉ. भारिल्ल भी सत्य की कीमत पर कभी नहीं झुके। उनकी स्पष्ट नीति थी ह्न

''वस्तु के स्वरूप को समझ की आवश्यकता है, समझौते की नहीं। वस्तु के स्वरूप में समझौते की गुजाइश भी कहाँ है और उसके संबंध में समझौता करने वाले हम होते भी कौन हैं। समझौते में दोनों पक्षों को झुकना पड़ता है। समझौते का आधार सत्य नहीं, शक्ति होती है।''[२]

वे सत्य को संगठन से भी बहुत ऊपर देखते हैं ह्न

''मैं सत्य का उद्घाटन करूँगा और संगठन भी कायम रखूँगा। मेरे द्वारा न तो सत्य की कीमत पर संगठन होगा और न संगठन की कीमत पर सत्य ही छोड़ जायेगा।[३]''

डॉ. भारिल्ल के इन शब्दों में जो बेवाकी है। वह बहुत वर्षों पहले गाँधीजी के उद्गारों में हुआ करती थी।

गाँधीजी के निजी धार्मिक विचारों से हमारा कोई प्रयोजन नहीं। थोड़ी देर के लिए हमें उनकी उन नीतियों को समझना पड़ेगा, जिनका असर सीधा डॉ. भारिल्ल पर हुआ। विश्व में गाँधीजी को दार्शनिक के तौर पर नहीं, बल्कि सत्य–अहिंसा के बल पर हिन्दुस्तान की आजादी के लिए याद किया जाता है। इतिहास व राजनीति की हजारों पुस्तकें खोलकर देखें तो हम पायेंगे कि किसी इतिहास वेत्ता व राजनीतिक चिंतक ने सत्ता परिवर्तन व राज्य की प्रवृत्तियों में सत्य–अहिंसा का नामोल्लेख भी किया हो। यहाँ तक कि अधिकांश राजनीतिक चिंतकों ने तो इन तत्त्वों को राजनीति में बाधक तत्त्व माना। कभी किसी ने कल्पना में भी नहीं सोचा था कि सत्य और अहिंसा के बल पर भी तख्ता पलट की कार्यवाही हो सकती है। लेकिन गाँधीजी ने सत्य–अहिंसा को जीवन के सर्वांगीण रूप में देखा। सत्य उनके लिए लक्ष्य था और अहिंसा उसकी प्राप्ति का साधन।

''असहयोग, कानून का सविनय भंग और सत्याग्रह ह्न इन कदमों की मदद से गाँधीजी ने स्वराज्य का रास्ता तय किया। इसे हम चमत्कारपूर्ण घटना का त्रिविक्रम कह सकते हैं।[४]''

गाँधीजी का संपूर्ण प्रयत्न आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना के लिए था, लेकिन हिन्दुस्तान में उन्होंने जो ''स्वराज्य का आन्दोलन चलाया, कांग्रेस जैसी राजनीतिक राष्ट्रीय संस्था का मार्गदर्शन किया; वह उनकी प्रवृति पार्लियामेन्टरी स्वराज्य के लिए ही थी। स्वराज्य के लिए उन्होंने अन्याय और शोषण का, और परदेशी सरकार का निषेध करने में अहिंसा का सहारा लिया जाय, इतना ही आग्रह रखा।[५]''

डॉ. भारिल्ल का उद्देश्य आध्यात्मिक सत्य की स्थापना ही है। वह स्थापना वे पूरे संसार में करना चाहते हैं। उनके सामने सिद्धान्तों को ताक पर रखे बिना, शान्ति की स्थापना की जिम्मेदारी आन पड़ी है। वे लिखते हैं ह्न

''किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने के लिए शांति और प्रेम का रास्ता यद्यपि लम्बा रास्ता है; इसमें प्रतिद्वन्दी को नहीं, उसके हृदय को जीतना पड़ता है; जीतकर उसे समाप्त नहीं किया जाता, अपितु अपना बनाया जाता है; तथापि टिकाऊ और वास्तविक सफलता प्राप्त करने का एक मात्र रास्ता यही है। इसमें असीम धैर्य की आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्ति में तो इतना धैर्य होता ही नहीं कि वह इतनी प्रतीक्षा कर सके ह्न यही कारण है कि साधारण व्यक्तियों द्वारा महान कार्य सम्पन्न नहीं हो पाते।[६]

जिन्होंने गहराई से अध्ययन किया होगा, उन्हें मालूम होगा कि गाँधीजी को अंग्रेजों के समानान्तर, हिन्दुस्तानियों का भी विरोध झेलना पड़ा। गाँधीजी इन सबसे अप्रभावित रहे। यदि हिन्दुस्तान की जनता भी कोई गलत कार्य करती तो वे उसकी भी निंदा करते। चोराचोरी की घटना इसका सशक्त प्रमाण है।

फरवरी १९२२ में जब आन्दोलनकारियों ने चोराचोरी में एक पुलिस चौकी को जला दिया तो गाँधीजी ने अपना आन्दोलन तत्काल वापिस ले लिया; क्योंकि वे हिंसा के बल पर आजादी नहीं चाहते थे। हिंसा के बल पर यदि आजादी मिलती है तो हिंसा के प्रति जो आस्था लोगों के अंदर बैठ जायेगी; वह आस्था परतंत्रता से भी अधिक खतरनाक होगी।

गांधीजी की इस नीति का डॉ. भारिल्ल पर गहरा असर हुआ। वे लिखते हैं ह्न ''भाई प्रतिकार का रास्ता उचित नहीं। प्रतिकार का रास्ता विघटन की ओर ले जाता है।[७]''

''विवेकी जीव यथासंभव संघर्ष को टालने में अपनी जीत समझते हैं।[८]'' ''गलतफहमियों से उत्पन्न आपसी समस्याओं को यदि हम आमने–सामने बैठकर निपटा लें तो व्यर्थ के संघर्षों से बहुत कुछ बच सकते हैं। तथा विनाशक युद्धों को अहिंसात्मक प्रति–योगिताओं में बदलकर विश्व को विनाश से बचाये रख सकते हैं।[९]''

डॉ. भारिल्ल के उक्त कथनों से लगता है जैसे गाँधी ही बोल रहे हैं।

डॉ. भारिल्ल बलात किसी को बदलने में विश्वास नहीं रखते। उनका विश्वास हृदय परिवर्तन में है। वे गलत काम की निन्दा करते हैं चाहे वह हमारे पक्षवालों से हो, चाहे विपक्ष वालों से। उनकी नीतियों में सत्य का मुखर आग्रह है। वे लिखते हैं ह्न

''किसी का भंडाफोड करना, यह तत्त्वज्ञान के प्रचार का सही रास्ता नहीं। यह तो नकारात्मक मार्ग है। यह रचनात्मक मार्ग नहीं। रचनात्मक मार्ग तो सत्य का उद्घाटन करना है न कि उसका फंडाफोड। सत्य का उद्घाटन सत्य को समझना ही है।[१०]''

''सबको प्रेम से गले लगाने में ही सच्ची विजय है। विरोधियों का बिखर जाना कोई विजय नहीं। विरोध का समाप्त हो जाना भी पूरी विजय नहीं; अपितु सबका सत्य के प्रति प्रेम, तत्त्व के प्रति प्रेम हो जाना ही सच्ची विजय है।[११]''

डॉ. भारिल्ल के इस धार्मिक आन्दोलन में रक्तपात, संघर्ष और विद्वेष के लिए कोई स्थान नहीं। वे लिखते हैं ह्न

''धर्म का यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि उसके नाम पर रक्तपात हुआ और उस रक्तपात के कारण वह धर्म विश्व में घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। जिस धर्मतत्त्व के प्रचार के लिए हिंसा अपनाई गई, वही हिंसा उसके ह्रास का कारण बनी।[१२]''

गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो हमें दूसरा गाल बढ़ा देना चाहिए। गांधीजी के इस कथन की बहुत खिल्ली उड़ाई जाती है, किन्तु इसमें छुपे निहितार्थ को आन्दोलन के परिपेक्ष्य में किसी ने समझने की कोशिश नहीं की। दरअसल हिन्तुस्तानी आपस में लड़ रहे थे। ऐसी स्थिति में गांधीजी ने कहा कि आपस में झगड़ना बंद करो और मिल कर अंग्रेजों से लड़ो। ये उनको चेतानेवाली बात का निहितार्थ था।

बहरहाल डॉ. भारिल्ल इसी सत्य को दूसरे शब्दों में कहते हैं ह्न ''गोली का जवाब गोली से देना तो बहुत दूर हमें तो गोली का जवाब गाली से भी नहीं देना है। ऐसा पाप हमसे नहीं होगा।[१३]''

''हम न तो किसी की निन्दा करते हैं और न लड़ाई–झगड़ा करते हैं। हम तो शान्ति चाहते हैं।[१४]''

गांधीजी ने अंग्रेजों को उनके कर्तव्यों और गल्तियों का अहसास दिलाने के लिए अहिंसा, सत्य और उपवास का रास्ता अपनाया।

नागपुर में जिनवाणी के अपमान का १९८७ का प्रसंग याद आता है; जब डॉ. भारिल्ल ने उस माहौल में स्थिति को कैसे संभाला ह्न

''समाज का स्नेह, हम उनसे हाथ जोड़कर प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। हमें उनका स्नेह मिलेगा तो हम पूरे संकल्प के साथ उनके साथ रहेंगे और नहीं मिलेगा तो जिनवाणी की आराधना करना तो हम छोडेंगे नहीं।[१५]''

''हम तो जो हमारे भाई हैं, उनका हृदय परिवर्तन चाहते हैं। वे हमें प्रेम से बुलावे और हम प्रेम से जायें ह्न यही हमारा रास्ता है। उसमें भले ही थोड़ी देर लग सकती है, लेकिन अंधेर नहीं हो सकता।[१६]''

इस प्रसंग में जिनवाणी की सुरक्षा और सामाजिक एकता आन्दोलन की यह रूपरेखा देखिए, जहाँ साध्य की गरिमा के अनुरूप साधन की पवित्रता पूरे गौरव के साथ उपस्थित है।

यहाँ डॉ. भारिल्ल गांधीजी के उपवास, प्रार्थना सभा आदि के फार्मूले को नये रूप में प्रस्तुत करते हैं ह्न

''हमारे इस जिनवाणी की सुरक्षा एवं सामाजिक एकता आन्दोलन के तीन चरण होंगे ह्न प्रथम चरण में हम इस शान्तिप्रिय आन्दोलन में भाग लेने वाले कम–से–कम दस हजार कार्यकर्ताओं के संकल्प पत्र भरेंगे। दूसरे चरण में अपनी शान्ति प्रार्थनाएँ आरंभ करेंगे। यदि आवश्यकता हुई तो हम सामूहिक उपवास के तृतीय चरण में प्रवेश करेंगे। तृतीय चरण में जहाँ तक संभव हो जिनमंदिर में अन्यथा स्वाध्याय भवन, धर्मशाला या सार्वजनिक स्थान पर एक दिन का उपवास करेंगे।[१७]'' ''उत्तेजना उत्पन्न करने वाली चर्चा नहीं करेंगे।[१८]'' ''संपूर्ण कार्यक्रम में हाथ पर पीली पट्टी अवश्य बाँधेंगे।[१९]'' ''हमारे इस आन्दोलन का पवित्र उद्देश्य प्रार्थना सभाओं एवं सामूहिक उपवासों द्वारा हम सभी साधर्मी बन्धुओं के हृदय को निर्मल करना है, अपनी निर्मल भावना को सशक्त ढंग से सभी साधर्मियों तक पहुँचाना है।[२०]''

यद्यपि डॉ. भारिल्ल की ये पंक्तियाँ प्रसंग विशेष पर आयी हैं, किन्तु यह उनकी तात्कालिक नहीं, अपितु स्थायी नीति है।

सत्याग्रह और अहिंसात्मक आन्दोलन को जब लोगों ने कायर करार दिया था तो उस समय गांधीजी ने कहा था कि ह्न

''सत्याग्रह सबसे बड़ा बल है। यह तपोबल से ज्यादा काम का है तो फिर कमजोरों का हथियार कैसे माना जायेगा? सत्याग्रह के लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिए, वह तपोबल का बल रखने वाले के पास नहीं हो सकती।[२१]''

''तोप चलाकर सैकड़ों को मारने में हिम्मत की जरूरत है? या हँसते–हँसते तोप के मुँह पर बँध कर धज्जियाँ उड़ने देने में हिम्मत की जरूरत है?[२२]''

''यह निश्चित मानिये कि नामर्द आदमी कभी सत्याग्रही नहीं हो सकता। हाँ यह सही है कि शरीर से दुबला हो, वह भी सत्याग्रही हो सकता है।[२३]'' बच्चे, बूढ़े, औरतें सभी सत्याग्रही हो सकते हैं। इसमें शरीर बल की नहीं, सत्य के बल की आवश्यकता होती है। यह बल जिसके पास है, वह कायर कैसे हो सकता है?

डॉ. भारिल्ल की रीति–नीति पर भी कदाचित् कायरता का आरोप लगाया गया; किन्तु उनको इसकी परवाह नहीं।

''क्या नहीं लड़ना कायरता है और लड़ना वीरता? यदि वीरता झगड़ालूपन का नाम है और शान्तिप्रियता का नाम कायरता है तो मैं कायर ही भला। ऐसी वीरता मुझे नहीं चाहिए। तत्त्व का प्रचार लड़कर नहीं किया जा सकता।[२४]''

यद्यपि यह सच है कि डॉ. भारिल्ल की रीति-नीति में जो कोमलता है, उसमें कानजीस्वामी का स्पंदन है; किन्तु एक-दो स्थानों पर तो उन्होंने स्वयं गांधीजी का नाम लेकर अपनी नीतियों को मजबूती दी। ये बात लिखते हुए बहुत पीड़ा होती है कि महात्मा गांधी व डॉ. भारिल्ल जिस आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे, वह उस मात्रा में नहीं हो सकी। यहाँ तक कि न चाहते हुए भी देश में शान्ति के खातिर देश-विभाजन की त्रासदी गांधीजी को झेलनी पड़ी। विभाजन की महापीड़ा गांधीजी को भीतर से तोड़ने के लिए काफी थी।

डॉ. भारिल्ल का भी एकमात्र उद्देश्य बिना किसी निन्दा-प्रशंसा के जैन तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार करना है। उन्होंने कभी नहीं चाहा कि हम समाज से अलग हों, समाज दो ध्रुवों में बंटे; लेकिन जब स्थिति ये बनी कि प्रचार के चक्र में हमें अपनी ही साधना में बाधा आने लगी, प्राणों से प्रिय जिनवाणी का निरादर होने लगा तो डॉ. भारिल्ल को दिल पर पहाड़ जैसा पत्थर रखकर लिखना पड़ा ह्न

''किसी कंटक को समाप्त करने की बात हम तो सोच भी नहीं सकते। हम तो बहुत-से-बहुत आगे बढ़ेंगे तो यह सोच सकते हैं कि यदि समाज में शान्ति से रहकर हम अपनी धर्मसाधना, साहित्य की आराधना और स्वाध्याय नहीं कर सकते तो अलग बैठकर स्वाध्याय करेंगे।[२५]''

उन्होंने कभी नहीं चाहा कि समाज में विघटन हो, लेकिन उसके बीज तो उन्हें उत्तराधिकार में मिले। वे तो आज भी चाहते हैं कि समाज में एकता हो।

''सत्य की प्राप्ति के लिए समस्त जगत से कटकर रहना आवश्यक है। इसके विपरीत सत्य के प्रचार के लिए जनसंपर्क जरूरी है।[२६]'' डॉ. भारिल्ल की जनसंपर्क वाली नीति आज भी बरकरार है, किन्तु **कुछ अपने ही नाथूराम गोडसीय तत्त्व उनकी इस नीति को पसंद नहीं करते।** अतः उनका संघर्ष भी गांधीजी की तरह दुतरफा है। एक अपनों से, दूसरा बाहरी शक्तियों से।

इसप्रकार हमने देखा कि डॉ. भारिल्ल ने जिन मुश्किलों में अपना रास्ता तय किया; उसके लिए इससे बेहतर कोई रीति-नीति नहीं हो सकती थी। कानजीस्वामी से तो उन्हें पूरा जीवन ही मिला, किन्तु गांधीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन को वैचारिक एवं प्रयोगात्मक तौर पर अपनाने वालों में डॉ. भारिल्ल का नाम निश्चित ही अग्रणीय है। उनकी गांधीगिरी सतही नहीं, बल्कि एक पूरा दर्शन प्रस्तुत करती है।

अंत में डॉ. भारिल्ल द्वारा भीगे हृदय से समाज से की गई अपील को उन्हीं के शब्दों में लिखकर मैं विराम लेता हूँ।

''तात्विक विवादों से बचने का एक मात्र उपाय जिनवाणी का गहराई से स्वाध्याय करना ही है।[२७]''

''संपूर्ण जगत जितना बन सके जिनवाणी का अभ्यास करे; क्योंकि सच्चे सुख और शांति की मार्गदर्शक यह नित्यबोधक वीतरागवाणी ही है, जिनवाणी ही है।[२८]''

''विषय-कषाय, व्यापार-धंधा और व्यर्थ के वादविवादों में समय निकालकर वीतरागवाणी का अध्ययन करो, मनन करो, चिंतन करो; बन सके तो दूसरों को भी पढ़ाओ, पढ़ने की प्रेरणा दो, इसे जन-जन तक पहुँचाओ, घर-घर में बसाओ।

स्वयं न कर सको तो यह काम करने वालों को सहयोग अवश्य करो। वह भी न कर सको तो कम-से-कम इस भले काम की अनुमोदना ही करो।

बुरी होनहार से यह भी संभव न हो तो कम-से-कम इसके विरुद्ध वातावरण तो मत बनाओ। इस काम में लगे लोगों की टाँग तो मत खींचो, इसके अध्ययन-मनन को निरर्थक तो मत बताओ। इसके विरुद्ध वातावरण तो मत बनाओ।

यदि आप इस महान कार्य को नहीं कर सकते, करने के लिए लोगों को प्रेरणा नहीं दे सकते तो कम-से-कम इस कार्य में लगे लोगों को निरुत्साहित तो मत करो, उनकी खिल्ली तो मत उड़ाओ। आपका इतना सहयोग ही हमें पर्याप्त होगा।[२९]''

संदर्भ :ह्न

१.सत्य की खोज : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-२४१
२.धर्म के दशलक्षण : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-८१
३.सत्य की खोज : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-११८
४.'हिन्द स्वराज्य' (भूमिका' : काका कालेलकर; पृष्ठ क्र.-६
५.वही, पृष्ठ क्र.-८
६.सत्य की खोज : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-२४७
७.बिखरे मोती : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-२६३
८.सत्य की खोज : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-१६
९.गोम्मटेश्वर बाहुबली : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-१६
१०.सत्य की खोज : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-६४
११.वही, पृष्ठ क्र.-२३५
१२. मैं कौन हूँ : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-६४
१३.बिखरे मोती : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-१७९
१४.वही, पृष्ठ क्र.-१८९ १५. वही, पृष्ठ क्र.-१७१
१६. वही, पृष्ठ क्र.-१८० १७. वही, पृष्ठ क्र.-१६०-१६१
१८. वही, पृष्ठ क्र.-१६१ १९. वही, पृष्ठ क्र.-१६१
२०. वही, पृष्ठ क्र.-१६२
२१.हिन्द स्वराज्य : गांधीजी; पृष्ठ -६४
२२. वही, पृष्ठ क्र.-६४ २३. वही, पृष्ठ क्र.-२३
२४.सत्य की खोज : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-११६
२५.बिखरे मोती : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-१७७
२६.सत्य की खोज : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-१४२
२७.निमित्तोपादान : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; पृष्ठ क्र.-२३
२८.परमभाव प्रकाशक नयचक्र : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल पृ.क्र.१८३
२९.वही, पृष्ठ क्र.-१८४

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

6 से 13 नवम्बर	जयपुर	सिद्धचक्र विधान
28 नव. से 3 दिस.	अहमदाबाद (चैतन्यधाम)	पंचकल्याणक
7 से 14 दिसम्बर	बुन्देलखण्ड यात्रा	युवा फैडरेशन यात्रा
20 से 26 दिसम्बर	फिनिक्स (यू.एस.ए.)	पंचकल्याणक
30 व 31 दिसम्बर	मुम्बई	अधिवेशन-पत्रकार संघ

मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार 9

तीसरा प्रवचन

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

जानने की सामर्थ्य थोड़ी और मोह के तीव्र उदय से जानने की इच्छा अनन्त ह्न यही कारण है कि अज्ञानी का क्षयोपशमिक ज्ञान-दर्शन भी मोहोदय के कारण अनन्त दुःख का कारण बन रहा है। जानने की इच्छा (जिज्ञासा) के कारण ही बालक अग्नि को छूकर देखना चाहता है।

जब कोई तलाक देता है तो लोग उससे जानना चाहते हैं कि पहले से ही अच्छी तरह देखभाल कर, सोच-विचारकर शादी क्यों नहीं की?

यदि पहले से ही सावधान रहते तो यह दिन नहीं देखना पड़ता?

उत्तर में वह कहता है कि मैंने बहुत सोचा था, महिनों तक डेटिंग (शादी के पहले मिलना-जुलना) की थी; फिर भी.....। अरे भाई! सभी ने इसीप्रकार सोच-सोचकर गर्दन फँसाई है और अब भोग रहे हैं।

टी.वी. और सिनेमा का देखने-दिखाने का अरबों रुपयों का व्यवसाय चल रहा है। वहाँ है क्या, मात्र नग्न चित्रों को देखने की इच्छा ही इस अनुपयोगी व्यवसाय को पनपा रही है।

मोहनीय कर्म में, विशेषकर दर्शन मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व के उदय में यह जीव लगभग सम्पूर्ण जगत से अपनापन स्थापित कर लेता है; जो पदार्थ इसके ज्ञान के ज्ञेय बनते हैं, उनसे ही अपनापन स्थापित कर लेता है।

इसप्रकार के लोगों की वृत्ति और प्रवृत्ति का चित्रण पण्डित टोडरमलजी इसप्रकार करते हैं ह्न

''जैसे ह्न पागल को किसी ने वस्त्र पहिना दिया। वह पागल उस वस्त्र को अपना अंग जानकर अपने को और वस्त्र को एक मानता है। वह वस्त्र पहिनाने वाले के आधीन होने से कभी वह फाड़ता है, कभी जोड़ता है, कभी खोंसता है, कभी नया पहिनाता है ह्न इत्यादि चरित्र करता है।

वह पागल उसे अपने आधीन मानता है; उसकी पराधीन क्रिया होती है, उससे वह महा खेद-खिन्न होता है।

उसीप्रकार इस जीव को कर्मोदय ने शरीर सम्बन्ध कराया। यह जीव उस शरीर को अपना अंग जानकर अपने को और शरीर को एक मानता है। वह शरीर कर्म के आधीन कभी कृष होता है, कभी स्थूल होता है, कभी नष्ट होता है, कभी नवीन उत्पन्न होता है ह्न इत्यादि चरित्र होते हैं। यह जीव उसे अपने आधीन मानता है, उसकी पराधीन क्रिया होती है; उससे महाखेदाखिन्न होता है।

तथा जैसे ह्न जहाँ वह पागल ठहरा था; वहाँ मनुष्य, घोड़ा, धनादिक कहीं से आकर उतरे; वह पागल उन्हें अपना जानता है। वे तो उन्हीं के आधीन कोई आते हैं, कोई जाते हैं, कोई अनेक अवस्थारूप परिणमन करते हैं; वह पागल उन्हें अपने आधीन मानता है, उनकी पराधीन क्रिया हो तब खेदखिन्न होता है।

उसीप्रकार यह जीव जहाँ पर्याय धारण करता है; वहाँ स्वयमेव पुत्र, घोड़ा, धनादिक कहीं से आकर प्राप्त हुए; यह जीव उन्हें अपना जानता है। वे तो उन्हीं के आधीन कोई आते हैं, कोई जाते हैं, कोई अनेक अवस्थारूप परिणमन करते हैं; यह जीव उन्हें अपने आधीन मानता है, और उनकी पराधीन क्रिया हो तब खेदखिन्न होता है।[१]''

इसप्रकार दर्शनमोहनीय कर्म अर्थात् मिथ्यात्व के उदय से यह जीव अनन्त दुःख प्राप्त करता रहा है।

चारित्र मोहनीय के उदय में २५ कषायें होती हैं। कषायों के कारण इस जीव की कैसी दुर्दशा होती है ह्न यह किसी से छुपी नहीं है। पण्डितजी ने इसका बहुत मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

क्रोध के उदय में आँखें लाल हो जाती हैं, गालियाँ बकने लगता है, माँ-बहिन का भी ख्याल नहीं रखता है; मरने-मारने पर उतारू हो जाता है।

यदि कोई इष्टजन या पूज्य पुरुष बीच में आ जाये तो उन्हें भी भला-बुरा कहने लगता है, कुछ विचार नहीं करता। यदि अन्य का बुरा न हो तो बहुत दुःखी होता है और अपने अंगों का घात करने लगता है, विषादि का भक्षण कर मर जाता है।

मान कषाय के कारण ओरों को नीचा और स्वयं को ऊँचा करने की इच्छा होती है, तदर्थ अनेक उपाय करता है। मरने के बाद हमारा यश होगा ह्न ऐसा सोचकर मरकर भी अपनी महिमा बढ़ाना चाहता है। सफल न होने पर बहुत दुःखी होता है और विषादि खाकर मर जाता है।

इसीप्रकार २५ कषायों के उदय में मरणपर्यन्त दुःख भोगने का चित्रण टोडरमलजी ने इस तीसरे अधिकार में किया है; जो मूलतः पठनीय है। विस्तारभय से यहाँ प्रत्येक की चर्चा करना संभव नहीं है। **(क्रमशः)**

---

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ-५१-५२

2 नवम्बर 2008, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

पाठकों के पत्र

१. जैनपथप्रदर्शक (अक्टूबर-द्वितीय-०८) एवं वीतराग-विज्ञान (अक्टूबर-०८) में प्रकाशित समाचार को पढकर **रोहतक (हरियाणा) से डॉ. एस. के. जैन** लिखते हैं ह्न

राष्ट्रसंत सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज द्वारा आप (डॉ.भारिल्ल) को '**समयसार का शिखर-पुरुष**' घोषित करने के अवसर पर आपको मेरी तरफ से व हमारी समयसार की दोनों कक्षाओं (पुरुष वर्ग और स्त्री समाज) की तरफ से ढेर सारी बारम्बार बधाई हो, साथ में दीपावली की भी शुभकामनायें स्वीकार करें। समयसार की नई विवेचन शैली ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका की सरलता व स्पष्टता का कोई सानी ही नहीं है। हम हर रोज इसका स्वाध्याय कर रहे हैं, इसमें जम रहे हैं ... रम रहे हैं।

२. वीतराग-विज्ञान, अक्टूबर २००७ अंक में सम्पादकीय के रूप में प्रकाशित डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित **प्रवचनसार : एक अनुशीलन** को पढ़कर नई **दिल्ली से डॉ. शगुनचंद जैन** लिखते हैं कि ह्न वीतराग-विज्ञान (अक्टूबर २००७) में प्रकाशित जैन अनेकांत शैली के प्रयोग से व शास्त्रीय आधार से आपके द्वारा लिखित '**द्रव्यलिंग-भावलिंग**' की चर्चा पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता हुई।

आशा है कि आपका लेख जैन समाज में उत्पन्न प्रतीत होती हुई कटुता को दूर करने में एक मौलिक प्रयास होगा।

पीएच.डी. की उपाधि से सम्मानित

श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक **श्री नितेश शाह, बाँसवाड़ा** को उनके शोध प्रबंध '**कविवर द्यानतराय के साहित्य में प्रतिबिम्बित अध्यात्म चेतना**' विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। आपने यह शोध जैन अनुशीलन केन्द्र राजस्थान विश्वववविद्यालय के निदेशक **प्रो. पी.सी. जैन** के मार्गदर्शन में पूर्ण किया है। आप वर्तमान में जयपुर के दिल्ली पब्लिक स्कूल में वरिष्ठ अध्यापक पद पर कार्यरत हैं।

जैनपथप्रदर्शक परिवार आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

छात्र प्रवेश फॉर्म आमंत्रित

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-४, बापूनगर, जयपुर ह्न ३०२०१५ (राज.) की जनवरी २००९ में आयोजित होनेवाली शीतकालीन परीक्षाओं के खाली छात्र प्रवेश फॉर्म संबंधित परीक्षा केन्द्रों को डाक द्वारा भेजे जा चुके हैं। कृपया शीघ्र भरकर भिजवा देवें। जिनको डाक की गड़बड़ी से प्रवेश फॉर्म नहीं मिले हों, वे कृपया तत्काल परीक्षा बोर्ड कार्यालय को पत्र लिखकर मंगा लेवें।**ह्न ओ. पी. आचार्य, प्रबंधक**

डॉ. सेठी लन्दन में

दिनांक 26 जुलाई से 2 अगस्त तक किंगस्टन यूनिवर्सिटी के बौद्ध जैन स्टडी सेन्टर द्वारा डॉ. बी. एल. सेठी, विभागाध्यक्ष इतिहास, झुंझुनूं को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया।

वहाँ आपका जैन इतिहास विषय पर विशेष व्याख्यान हुआ।आपने वहाँ क्वीन ऐलिजाबेथ म्यूजियम एवं ब्रिटिश म्यूजियम में स्थित प्राचीन जैन मूर्तियों का अवलोकन कर उसकी ऐतिहासिक जानकारी लोगों को दी। डॉ. सी. डब्ल्यू एल. सी. ने आपका आभार प्रदर्शन किया।

(पृष्ठ 1 का शेष...)

को जन-जन तक पहुँचाने में जुटे हुये हैं, अहर्निश उसी में लगे हुये हैं। यह भी हो सकता है कि आप भी उनमें से एक हों।

जिसप्रकार हम कह रहे हैं कि वह झंडा आज हमारे हाथ में है; उसीप्रकार आप भी कह सकते हैं कि वह झंडा हमारे हाथ में है, पर मात्र कहने से काम नहीं चलेगा, उसके लिये अपने जीवन का समर्पण करना होगा।

हम और आप व्यक्तिगतरूप से इतने समर्थ नहीं हैं कि इस गुरुतर भार को ढो सकें; इसलिये सबके सहयोग की परम आवश्यकता है। आओ हम सब मिलकर इस भार को संभालें, इस महान कार्य को अंजाम दें; इसमें ही हम सब का भला है और दीपावली का वास्तविक सन्देश भी यही है।

हमारी भावना तो बस इतनी ही है कि महावीर का झंडा झुकने न पावे; उनकी वाणी को जन-जन तक पहुँचाने का महान कार्य निरन्तर चलता रहे; इस दीपावली के अवसर पर भगवान महावीर के लिये इससे बढ़िया श्रद्धांजली और कुछ नहीं हो सकती।

दीपावली मनाने का रूप ऐसा ही होना चाहिये कि महावीर की वाणी को जन-जन तक पहुँचाने के कार्य में तेजी आवे।

ध्यान रहे इस अवसर पर डॉ. भारिल्ल कृत '**रक्षाबंधन और दीपावली**'पुस्तक का प्रभावना के रूप में वितरण भी हुआ। ●

नोट ह्न यदि आप डॉ. भारिल्ल के विचारों से पूरी तरह अवगत होना चाहते हैं, तो '**रक्षाबंधन और दीपावली**' पुस्तक का अध्ययन करें।

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127